Kings
Kings

उत्तर - औद्योगिक परिवर्तन

समकालीन मुंबई में नागरिकता के अनुमानित चिन्तनशील भविष्य

वैजयन्ती राव

दक्षिण एशियाई नगर पर पुनः विचार

आज शहरी अध्ययन, दुर्दशाओंही पर काफी ज्यादा ध्यान केंद्रित करते हैं। समकालीन शहरों में व्याप्त हालात में उम्मीद की एक किरण ढूंढ़ने की बड़ी कोशिश की जा रही हैं। सामाजिक बदलाव के चलते आधुनिकता के प्रतीक शहर और सामाजिक बदलाव की समझ में भी भारी बदलाव आया है। बहुत तेजी से हो रहे शहरीकरण और ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले शहरों में बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में हुई बढ़ोतरी के कारण यह अनुसन्धान, विवाद और विरोध के विषय बनते जा रहे हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरण सम्बधी समस्याओं को जिस तरह शहरों द्वारा उजागर किया जा रहा है, वे यह तय कर रही हैं कि डिजाइन अनुसन्धान को कौन सा रास्ता अपनाना चाहिए। (देखिए ब्रूस माऊ की नव प्रकाशित पुस्तक 'मैसिव चैंज') साथ ही साथ समाज शास्त्र के तौर तरीकों, नई सोच को कौन सा मोड़ जाना चाहिए। (देखिए मिसाल के तौर पर, अमीन और थ्रिफ्टकी पुस्तक 'सिटिज, रिइमेजनिंग द अर्बन') बहुत से लेखकों ने शहरों की उपेक्षा पर लिखा है। उनके मुताबिक यह एक ऐसा स्थान है जहाँ 19 वीं सदी में आधुनिक सामाजिक विकास से सम्बद्ध घटनाओं से समाज को समझा जा सकता है। इस रवैये के चलते मुंबई जैसे शहरों के हालात पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। 20वीं सदी की शुरुआत में वॉल्टर बैन्जमिन जैसे चिन्तक ने एक लेखक के नाते शहरी अनुभव की आधुनिकता की केन्द्रीयता को पहचाना था। उनके मुताबिक 'यह एक ऐतिहासिक घटना' थी। तभी तो पेरिस को 'आधुनिकता की राजधानी' माना गया था। आज समकालीन शहरी हालात को समझने के लिए मुंबई, लोगोस और दुबई जैसे शहरों को एक उदाहरण माना जाता है। उदाहरण के लिए कुछ ही सालों में मुंबई को पूरे विश्व में सबसे विशाल शहरी समूह माना जाएगा। इन शहरों की कहानियां लिखना अब एक महत्वपूर्ण काम माना जाने लगा है। लेकिन कहानियां किस नजरिए से लिखी जाएं इसकी खोज भी उतनी ही तीव्रता से जारी है।

जैसे -जैसे दक्षिण एशिया के सांस्कृतिक इतिहासकारों का ध्यान शहरों की ओर जा रहा है वैसे- वैसे साफ होता जा रहा है कि आधुनिक दक्षिण एशिया के इतिहास और साहित्य में शहर आसानी से पूरा नहीं उतर रहा है। दक्षिण एशियाई समाज में गाँव को प्राकृतिक और वास्तविक स्थान समझा जाता था। देश की कहानी में शहरों का कोई स्पष्ट स्थान नहीं है। परिणामस्वरूप शहरी मामलों की विकास नीतियों को नजरअन्दाज किया गया था। बेशक भारत की अधिकांश आबादी गांव में रहती है। फिर भी शहरी समस्याएं ऐतिहासिक स्तर पर अद्वितीय तरीके से सामने आ रही हैं। *1 इस बदलाव के कई कारण हैं। इस बदलाव में सबसे ज्यादा केन्द्रित है मुंबई। ऐसा विशेष रूप से 1992 और 1993 के दंगों के बाद हुआ। हाल ही में हुए आंतकवादी हमलों और ढांचागत असफलताओं के कारण शहर की चिन्ताएं बढ़ी हैं।

इस लेख में मैं अपना ध्यान आज की मुंबई में आ रहे बदलाव पर केंद्रित करना चाहती हूँ। आज से मेरा मतलब 90 के दशक से आज तक से है। यह उत्तर औद्योगिक काल था। मैं, प्रथम तो भारत और उसके बाहर शहरीपन के बारे में होने वाली बहसों में मुंबई की केन्द्रीयता दूसरे मैं उन बदलावों के बारे में बताना चाहती हूं जिनके कारण मुंबई भारत में बेजोड़ और अनुकरणीय है। अगर हम इस दुनिया को व्यापक मानते हैं तो मैं दिखाना चाहूंगी कि कैसे कुछ स्थल, बेशक वे पूरी तरह बदल चुके हैं, अनुकरणीय बन जाते हैं। ऐसा तब होता है क्योंकि वे असंतुलित, अस्थिर और प्रयोगात्मक होते हैं। यह अनुकरण करने का उदाहरण तो कतई नहीं है। इस तर्क को आगे बढ़ाने के लिए मैं उदारीकरण के युग के दौरान मुंबई में आए स्थानिक बदलाव पर अपना ध्यान केन्द्रित करूंगी। मुंबई के परिदृश्य को अगर मूलपाठ के रूप में देखा-पढ़ा जाए और वास्तुशिल्प और ढांचे को उभरते हुए शहरी परिरूप माना जाए तो मैं मुंबई के उस प्रयोग को उजागर करना चाहती हूँ जो विरोधाभासी है। यह विरोधाभास है योजना, विकास और परिरूप के संदर्भ में मुंबई का तर्कसंगत और सामान्य रिश्ता। एक तर्कसंगत तरीके से मुंबई की क्षेत्रीयता को सामने लाना भी जरूरी है। अन्त में यह लेख इस शहर के दु:स्वप्न, शहर के मिजाज का स्थानिक और सामाजिक बदलाव की भी चर्चा करेगा।

बम्बई से मुंबई

बम्बई का नाम शिवसेना ने 1996 में बदल कर मुंबई रख दिया था। उस समय राज्य सरकार और बम्बई नगर निगम पर इस राजनैतिक दल का नियंत्रण था। इस घटना से एक दशक पहले से ही कई बदलाव हो रहे थे। शहर के मानसिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली घटनाएं थीं 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद को गिरा दिया जाना और फलस्वरूप उसी दिन 6 दिसम्बर को बम्बई में शुरू हुए सांप्रदायिक दंगे। मार्च,1993 में क्रमिक बम विस्फोट में2500 लोग मारे गए थे। सम्पत्ति का बेहिसाब नुकसान हुआ था। इन घटनाओं को शहर में मानसिक बदलाव का एक मुख्य कारण माना गया है। इन घटनाओं के बाद लिखी गई पुस्तकों के शीर्षक बहुत कुछ कहते हैं। इनमें से कुछ पुस्तकें हैं - फ्रॉम बॉम्बे टू मुंबई, बॉम्बे ॲन्ड मुंबई, अ सिटी इन ट्रॉन्जिशन, वेजेस इन वाइलेंस; नेमिंग एंड वाइलेंस इन पोस्ट-कलोनियल बॉम्बे। ये पुस्तकें बाबरी मस्जिद के बाद लिखी गई थीं। इनके लेखक और सम्पादक 'बम्बई' और मुंबई को दो अलग अलग हस्तियों के रूप में देखते हैं। दोनों के अपने स्वभाव और विशेष तौर तरीके हैं। अधिकांश समाजशास्त्र के बारे में रचित साहित्य बम्बई की आधुनिकता और इसके विश्वव्यापी स्वभाव को मानता है। (उदाहरण के लिए सुजाता पटेल की सम्पादित पुस्तक बॉम्बे में देखें) लेकिन जैसा कि अर्जुन अप्पादुराई ने कहा है इस विश्वनागरिकता के विषय बिल्कुल भी स्थिर नहीं रहे हैं। व इसे विविधता के प्रति सहिष्णुता बताते हैं। इस सहिष्णुता का कारण है अलग-अलग भाषाई, जातीय और प्रादेशिक समूहों के व्यावसायिक रिश्ते। अप्पादुराई के ही शब्दों में बम्बई की सही परिभाषा है 'व्यापार की सर्वदेशीयता'।

विद्वानों और लोकप्रिय लेखकों ने व्यक्ति, वस्तु और

सम्पत्ति के विरुद्ध हिंसा को बम्बई के इतिहास में एक मोड़ बताया है। लेकिन ये परिभाषाएं मुंबई के इतिहास को राष्ट्रीय इतिहास में प्रतिनिधित्व की जगह देती हैं। समुदायों के सम्बधों का टूटना एक बेहद हिंसात्मक ढंग से 1992-293 के दंगों में जाहिर हुआ था। वे यह भी मानते हैं कि संबंधों की यह टूटन राष्ट्रीय स्तर पर एक लाक्षणिक अभिव्यक्ति थी। शहरी संबंधों की विशेषता को इसकी मुख्य वजह मानने का खास आधार नहीं है।*2 दूसरे शब्दों में शहर का संकट सम्भवत राष्ट्रीय संकट में हिंसा बाँट सकता है। राष्ट्रीय इतिहास में इस शहर की जगह संदिग्ध है। पार्था चैटर्जी का दावा है कि उपनिवेश विरोधी राष्ट्रीय सोच में शहर की कोई 'मूलभूत कल्पना' न थी। इसलिए मुंबई जैसी जगह में वहाँ का स्वभाव एकदम उभयभावी था। उपनिवेश धन से निर्मित मुंबई जैसे शहरों में आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति में भागीदार बनने के अवसर थे। इसके चलते मुंबई ऐसे नकली स्थानों का भी प्रतिनिधित्व करती थी जहां राष्ट्रीय बिम्बवाद का सवाल था।

वर्तमान समय में आर्थिक उदारीकरण और राष्ट्रीय आर्थिक स्थान के उपलब्ध हो जाने से दक्षिण एशियाई शहर खुद में जांच-पड़ताल की मांग करता है। इस वक्त आर्थिक उदारीकरण और राष्ट्रीय आर्थिक स्थान के खुल जाने से यह और भी जरूरी हो गया है। बेशक इस शुरुआती दौर में पूरे देश के संदर्भ में यह गौण चीज बन कर रह गया है। राजनीति के क्षेत्र में चलती सर्वसत्ता के कारण शहरी संकटों को उभयभावी ढंग से देखा जाता है। राष्ट्र-राज्य प्रभुसत्ता के प्रश्न को सुलझा नहीं पा रहा है। दूसरे शब्दों में देश में आए संकट का शहरी संकट प्रतिनिधि बनकर प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। इन प्रश्नों के संदर्भ में राष्ट्र-राज्य की पंच की भूमिका लुप्त होती जा रही है। हिंसा से तहस-नहस होता शहर एक खास तरह का शहर होता है - यह एक व्यवस्थित शहर होता है। साफ नजर आता है कि एक व्यवस्थित राष्ट्र-राज्य का शासन सब संभाल रहा है। ऐसा स्थान को व्यवस्थित करके किया जाता है। स्थानिक प्रश्न का भयावह रूप उजागर होता जा रहा हैं। आज देश के बड़े नगरों के दैनिक जीवन में हिंसा के कारण विस्थापित हो जाना और स्थानिक बदलाव आम बात हो गई है। नेहरू युग में ग्रामीण ढांचा खड़ा करने की जो साहस भरी कोशिश की गई थी वह असफल रही। उसके नतीजे हमारे सामने हैं।

इस असफलता के चलते हमने देखा हैं। उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय समाज में सांस्कृतिक नगरों को नजर अन्दाज किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में फैली गरीबी कलकत्ता, बम्बई, नई दिल्ली जैसे नगरों में नजर आती है। 70 और 80 के दशकों में राज्यों द्वारा प्रायोजित हिंसात्मक स्थानान्तरण अभियानों के तहत हालात और भी बिगड़े हैं। सरकार द्वारा उठाए गए इन कदमों का विरोध चिन्तित लोगों और गैर-सरकारी संगठनों ने किया। मानवीय तर्कों का हवाला देकर पटरियों पर रहने वालों के हकों की लड़ाई लड़ी गई। इस तरह राजनेताओं के तथाकथित वोट बैंक बनाए गए। 20वीं सदी के मध्य में आते -आते दक्षिण एशियाई शहर के कल्पित इतिहास का सही वर्णन सम्भव न हो पाया। न तो राजनेताओं को कोई लाभ मिला और न ही इन अभागों को कुछ हासिल हुआ।

बेन्जमिन से लेकर कोरबूसियर तक अनेक आलोचकों, वास्तुशिल्पियों और लेखकों ने कहा है कि आधुनिक शहर की प्रमाणिक वंशावली में वास्तुशिल्प और शहरी डिजाइन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दक्षिण एशियाई शहर (विशेष रूप से भारतीय शहर) के संदर्भ में सतह, ऊपरी परत और भू-दृश्य, डिजाइन और संघटनात्मक क्रियाकलाप ने अपनी भूमिका पर्याप्त रूप से नहीं निभाई है। उल्टे उन पर निगाह रखी गई और वह भी इसलिए कि दूसरे विषयों का इतिहास लिखा जा सके। बेशक कहा जा सकता है कि इस नजरअन्दाजी के चलते हम नजर आने वाली चीजों को देख नहीं रहे है। समकालीन पल के विरोधाभास ने दृष्टिसीमा के प्रश्न को जटिल बना दिया है। इसका असर शहर की सतह पर हुआ है। सामाजिक वैज्ञानिक नजर को अब सतह उपलब्ध नहीं

है। भारतीय शहर के बारे में उसके परिदृश्य और सतह के बारे में सोचना एक तरह से कायापलट की ही चर्चा करने के बराबर है। यहाँ प्रत्यक्ष को देखना सतह या अनावश्यकसी बात करने के बराबर है।

आज के समकालीन पलों में जिस तेजी से निर्मित वातावरण बदल रहा है उसके चलते सतह और परिदृश्य, डिजाइन और क्रियाकलाप समाज विज्ञान के लिए केंद्रीय प्रश्न बन गए हैं। यह प्रश्न पुरालेख की उपलब्धता से बड़ी नजदीकी से जुड़ा है। भूतकाल से याददाश्त का अंशशोधन करने की सम्भावनाओं को विशाल स्तर पर बताना और बहादुरी के कारनामों द्वारा या फिर स्थिर स्मारकों के माध्यम से बताना एक मुश्किल काम है। हाल ही में इतिहास और सांस्कृतिक अध्ययनों में यह महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे गए हैं। इनमें से कुछ पुस्तकें हैं क्रिस्टीन बोयर का 'सिटी ऑफ कलेक्टीव्ह मेमरी', अशिली मेबेंबे का (यह समकालीन जोहान्नसबर्ग पर है) और अकबार अब्बास का 'हांगकांग कल्चर इन अ स्पेस ऑफ डीसअपीअरन्स' निबंध द एस्थेटिक ऑफ सुपर फ्लूइटि पूछे गए प्रश्नों के माध्यम से समकालीन मुंबई को उत्तर औद्योगीकरण की पूर्व सतहों और परिदृश्य के लेन्स से देखा जा रहा है। मैं इसमें उभरती हुई विचार धारा से जुड़ना चाहती हूँ। एक स्थल के रूप में मेरी रुचि मुंबई में इसलिए नहीं है कि यह एक भविष्य सूचक शहर का उदाहरण है। मेरी दिलचस्पी तो उस प्रयोग में है जिसके नतीजों के सहारे भारत में समकालीन भारत की सीमाएं तय होती हैं।

वास्तुशिल्प के माध्यम से चिन्तन

'हम अदृश्य सामाजिक व्यवस्था के उष:काल के सामने खड़े हैं, शहरी ढाँचे को तय करने में इसकी भूमिका बहुत बड़ी है। जो नजर आ रहा है वह दूसरी शक्तियों का उद्भेदन कर रहा है , नीचे से उभरती शक्तिशाली आदेश पंक्ति के लिए एक स्पष्ट अंतरापृष्ठ बन रहा है।' काझयस वार्नेलिस 'द सिटी बियोन्ड मेप्स'.

नक्शों की क्या भूमिका है? शहरों की शक्लो-सूरत के पीछे छुपी शक्तियों को प्रतिबिम्बित करना, या वहाँ के निवासियों की राजनैतिक क्षमताओं और अभिलाषाओं को दर्शाना। मुंबई जैसे शहरों के नक्शे 'खण्डित नगरीकरण' प्रतिबिम्बित करते हैं। यह मान्यता ग्राहम और मारविन की है। वे भी इसका श्रेय हाल ही में उभरी उदार पूंजीवादी राजनैतिक अर्थव्यवस्था को देते हैं। बड़ी तेजी से संस्थागत बदलाव आ रहा है। इसके चलते वास्तुशिल्प के माध्यम से एक अलग सोच बनाई जा सकती है। हाल के वर्षों में निर्माण के क्षेत्र में तेजी आई है। अधिकांश भारतीय शहरों में पूंजी-निवेश के लिए ऋण उपलब्ध है। बहुराष्ट्रीय स्तर पर भी पूंजी निवेश उपलब्ध है। सट्टेबाजी के चलते एक नई किस्म की संगठनात्मक गतिविधियाँ शुरू हो गई हैं। निजी पूंजी निवेश के चलते एक शहरी संकट पैदा हो गया है। इस तरह इन दशकों में आर्थिक बदलाव हुए हैं। इसलिए एक दूसरी तरह का शहर सामने आया है। आर्थिक बदलाव के इन दशकों में वास्तुशिल्प की औपचारिकताओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शहरी संकट के चलते बैंगलोर स्थित गैर-सरकारी संगठन 'जनाग्रह' के अध्यक्ष रमेश रामनाथन ने भी चर्चा की है (ऊपर नोट 1 देखें)।

सट्टाबाजारी के पैंतरों के चलते भौतिक आकार को ऐसे इस्तेमाल किया जा रहा है जिससे यह संस्थागत स्थल बन गया है। मुंबई के शहरी परिदृश्य में आए व्यापक बदलाव के पीछे एक नई सूचनात्मक व्यवस्था है। राज्य और बाजार दोनों मिलकर सामाजिक आवास प्रदान करना चाहते जरूर हैं पर उन्हें लाभ भी उठाना है। इसके चलते शहर का क्षितिज भी विशिष्ट बन गया है। समकालीन सट्टेबाजी से जुड़ी गतिविधियों में चलने वाली मुद्रा है - एक ओर विकास सम्बधी नियम और दूसरी ओर लोग। हाल बेहाल घरों में रहने वाले लोगों को समय समय पर झुग्गी-झोंपड़ियों और गिरने-ढहने की कगार पर पहुंच चुके घरों से उठा कर अस्थाई* कैम्पों में भेज दिया

जाता है। इस तरह उस जमीन का पुन: निर्माण-विकास कर दिया जाता है। इस तरह की सट्टेबाजी और शहर के उद्योगों को हटा देने में सीधा सम्बध है।**

अंग्रेजों के जमाने में मुंबई को 'पूर्व का मैनचेस्टर' कहा जाता था। यह बहुत बड़ा कपड़ा मिलों का जमावड़ा था। आर्थिक स्तर पर प्रासंगिक रहने के लिए उद्योग की इस राजधानी को मजबूरन 'नई अर्थव्यवस्था' की ओर मुड़ना पड़ा है। आई.टी. उद्योग के, इन नए उद्योगों में वित्तीय, अन्य सेवाओं और यहां काम करने वाले लोगों के लिए स्थान बनाना जरूरी हो गया है। ऐसा बैंगलोर जैसे छोटे नगरों पर लागू होता है। यहाँ अंतर्राष्ट्रीय पूंजी का निवेश हो रहा है। सासैन के शब्दों में अगर बम्बई एक 'अंतर्राष्ट्रीय नगर' बनना चाहता है तो उसे न सिर्फ अपने शहर के सामाजिक रिश्तों के बिगड़ते वातावरण को सुधारना होगा बल्कि पहले से बढ़ी हुई जनसंख्या पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। हिंसा में सबसे ज्यादा और साफ नजर आने वाली चीज है मुंबई के निर्माण। यहाँ बढ़ती सांप्रदायिकता का खतरा मंडरा रहा है। हालांकि लोगों और सम्पत्ति के विरुद्ध हिंसा साफ-साफ नजर नहीं आती है। शहर की जनसंख्या छोटे या बड़े स्तर पर अपने मकान बदल कर आक्रामक पड़ोस से दूर जा रहे हैं। खतरा तो कोई भी मोल नहीं लेना चाहता है। ***

उसके चलते एक ऐसा प्रयोगात्मक परिदृश्य उभर कर सामने आ रहा है जिससे मुंबई शहर देश के दूसरे शहरों से अलग थलग नजर आ रहा है।

स्थान सम्बधी यह बदलाव, ऊपर उठाए गए परिदृश्य और सतह से जुड़ा सवाल बहुत महत्वपूर्ण बन जाता है। यह प्रश्न वास्तुशिल्प को एक बेहद महत्वपूर्ण मानवशास्त्रीय विषय बना देता है। मैं इस लेख में एक गौरवपूर्ण जीवन जीने के लिए जरूरी एक घर की बात नहीं कर रही हूँ। मैं चर्चा करूंगी शहर के सतह और स्थान की। यहाँ मैं शहर कि वैधता की बात करना चाहती हूँ। मैं निर्मित स्थान को अपना विषय बनाना चाहती हूँ। शहर में आ रहे बदलाव में इन सतहों को क्या 'प्रक्षेपीय विस्तार' दिया जा सकता है। मैं वास्तुशिल्पीय आकारों और स्थानिक कल्पना के बीच रिश्तों को विशिष्टता प्रदान करना चाहती हूं। मुंबई जैसे शहर में सघनता का घटना-क्रिया-विज्ञान, यहाँ की भीड़-भाड़ और सान्निध्य हमारी संवेदनशीलता पर हमले करती है। आखिर हमारा सामाजिक आदान-प्रदान, मिलना -जुलना सब यहीं तो होता है। इसमें कोई हैरानी नहीं कि कल्पना के आकारों पर यह गहनता छाई रहती है। वास्तुशिल्प के मुखौटे के नीचे हमें लगातार स्थानिक कल्पनाओं के पुरातत्व का अंशशोधन करना पड़ता है।

डेनियल लाइबेसकिंड हाल ही में पहली बार मुंबई आए थे। उन्होंने टिप्पणी की थी, 'मुंबई एक ऐसा शहर है जो वास्तुशिल्पियों से बच निकलती है।' बेशक वे मुंबई को एक भौतिक विषय के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं यह एक ऐसा शहर है जहाँ ईटों और गारा-मसाला, सीमेंट, शीशे और इस्पात से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हैं , इन्सान। इस तरह की टिप्पणी के तर्क को मान लिया जाए तो मुंबई ऐसी जगह बन जाती है जहाँ वास्तुशिल्प गायब हो जाता है। उसकी जगह आ जाती है जनसंख्यिकीय गहनता। यही मुंबई का चाक्षुष आवरण है। यह तो ढांचे की पारम्परिक जगह भी हथिया लेती है। इन संकेतों को कैसे पढ़ा, समझा जाए?

माइक डेविस जैसे सिद्धान्तवादी व्यक्ति के अनुसार बड़ी दूर तक फैली झुग्गी-झोंपड़ियों में वास्तुशिल्पीय अभिव्यक्ति और इन गहनताओं को व्यवस्थित करते समय हमें नजर आता है फालतू मानव समूह। बेशक इसके लिए जिम्मेदार है हमारा शासन। हमें कुछ विरोधाभासों के बारे में जरूर सोच-विचार करना होगा। हाल ही में विश्व बैंक द्वारा जारी प्रलेख में कहा गया है - दुनिया की सबसे अधिक जनसंख्या वाली झुग्गी-झोपड़ियां मुंबई में हैं। ये सब दुनिया की सबसे महंगी स्थावर भू-सम्पत्ति पर स्थित हैं। मुंबई दुनिया में सबसे ज्यादा आबादीवाला शहर है। और साथ ही दुनिया ही के विशालतम शहरों में एक शहर मुंबई 'स्थलाकृत्यात्मक रूप से चुनौतीपूर्ण' है। जब डेविस एक लेख 'प्लैनेट ऑफ स्लमस' लिख रहे थे

तब (अब यह एक पुस्तक है) अनेक मुंबई में रहने वाले शहरी लोग कह-मान रहे थे कि मुंबई की सघनता और निम्नीकृत निर्माण का गरीबी से उतना वास्ता नहीं है जितना नीतियों से है। यहाँ किसी बड़ी संख्या में लोग नौकरी के चक्कर में आते हैं। यहाँ कोई न्यायसंगत तरीके से रहने को मकान न मिलने के कारण लोग झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने को मजबूर हो जाते हैं।

अगर बाहर से प्रवासी न भी आएं तो भी मुंबई संकटपूर्ण स्थिति में है। यह संकट सिर्फ आवास समस्या को लेकर नहीं है। मुंबई की वर्तमान आर्थिक स्थिति में अतिरिक्त जनसंख्या मुख्य समस्या है।

इस वर्ग के कार्यकर्ताओं का शहर के निर्मित स्थानों से संबंध महत्वपूर्ण है। शहर की निजी संपत्ति को लेकर जो नीतियां और निजी संस्थाएं हैं उसकी नींव है इस 'अतिरिक्त फालतू की जनसंख्या का उत्पादक त्याग' (देखें एमबीईएमबी 2004) किराए पर मकान उपलब्ध न होने के कारण प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति बनाने के लिए धन कहां से लाए। शहर की ढांचागत जरूरतों का हिसाब लगाते वक्त यह भी देखा जाता है कि लोगों द्वारा वर्तमान में अधिकृत और सम्भावित ढांचे कितने और कहां हैं। हाल ही में विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित मुंबई शहरी यातायात योजना (एमयूटीपी मुंबई अर्बन ट्रान्सपोर्ट प्रोजेक्ट) के चलते कई जटिल समझौते करने पड़े थे। जिन लोगों को इन महत्वपूर्ण स्थानों से हटाया गया उनकी आवास समस्या कोहल करना जरूरी था। नई आवासीय इकाइयां बनाते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि विस्थापित लोगों के अधिकृत अधिकारों का ध्यान रखा जाए। यह भी देखना जरूरी है कि शहर का विस्तार 'सामान्य' और 'तर्क संगत' ढंग से हो।

दूसरी बात यह है कि हालांकि शहर में नौकरियां मिल जाती हैं लेकिन संदीप पेंडसे के शब्दों में श्रमिक वर्ग या वेतन भोगी को 'मेहनतकश' ही माना जाएगा। ये वे लोग हैं जिनका जीवन ही निम्नतर और विनाशक श्रम से युक्त होता है। इनके जीवन में अगर तय तर्क है तो वह है 'उत्पादक त्याग' (वही)। मुंबई में उत्तर औद्योगिक - अर्थव्यवस्था में एक ऐसा पूरा का पूरा भूमिगत संसार है जिसमें त्याग ही त्याग है। जिन उद्योगों में ये लोग काम करते हैं उनसे अन्तराली परिवर्ती अर्थव्यवस्था पनपती है। यह उद्योग है पुरानी चीजों के नवीकरण में लगे अनेक उद्योग – मिठाई की दुकानों, सोने और हीरों से सम्बद्ध उद्योगों, जरदोजी की दुकानों और अन्तहीन और लघु उद्योगों में प्रवासियों के बच्चे काम करते हैं और शक्लहीन मेहनतकश और वे 'ज्ञान बांटने वाले कर्मी' जो रात की शिफ्ट में रगड़ देने वाले ऊँचे दरों पर चारा बन जाते हैं इस नई अर्थव्यवस्था को शक्लो सूरत देते है यह उत्पादक इकाइयां या तो उन जगहों पर स्थित हैं जिन्हें कोई उद्योग खाली कर गया है या फिर वह कहीं नजदीक ही हैं। और वातावरण को दूषित कर रही हैं। ये हैं बन्द हो चुकी कपड़ा मिलें और अन्य बड़े ढांचे, झुग्गी झोपड़ियां, टूटते -गिरते मकान, दलदलें, कच्छी जमीन, संकरी खाड़ी, नमक-क्यारियां, नदियां और पहाड़ियां। स्थान की भूख से ग्रस्त लोग इन्हीं जगहोंपर आबादी की जरूरत पूरी करने जमा हो जाते हैं। उनका लक्ष्य सिर्फ मुनाफा कमाना होता है। शहर में जगह की कमी है। इसलिए ये मुनाफाखोर इस ओर रुख कर रहे हैं। बड़ी अजीब बात है पर हाल ही में किए गए अनेक अध्ययनों से पता चलता है कि स्थान की उतनी कमी नहीं है। समस्या तो अवरुद्ध स्थान की है। शहर के बीचों- बीच 2600 एकड़ जमीन ऐसी है जो परित्यक्त मिलों और ऐसी बन्दरगाहों के कब्जे में हैं जहां कोई काम नहीं हो रहा है। राज्य और उसके विविध एजेन्ट - रेल विभाग, नगर निगम और भी बहुत से विभाग – एक हजार एकड़ से भी ज्यादा जमीन पर कब्जा जमाए बैठे हैं। इनमें से अधिकतर बेकार पड़ी है या यहां झुग्गी झोंपड़ियां बन चुकी हैं। 'अवरुद्ध जमीन' में अतिक्रमण के बाद बनाई गई झुग्गी - झोपड़ियां शामिल नहीं हैं। स्थान और सम्भावित स्थान विकास के लिए अवरुद्ध है। यहां वक्त ठहरा हुआ है। अवरुद्ध स्थान सिर्फ एक बोध मात्र है। इस बोध को सुधार करने को इच्छुक

निजी क्षेत्र ही समर्थन देता है। वह स्थान में लाभदायक मार्किट बनाना चाहता है।

इन नीतियों में कोई सुधार नहीं किया गया है। इसलिए औद्योगिक नगर के खण्डहरों पर चुपचाप एक अंतरिम शहर निर्मित हो रहा है। जिन स्थानों का मैंने पहले जिक्र किया है वह उत्तर औद्योगिक परिदृश्य हैं। ये सिर्फ उस नई अर्थव्यवस्था का समर्थन नहीं करते जो अब फैक्टरी आधारित उत्पादन पर निर्भर नहीं है। लेकिन ये दुनियावी तौर से उत्तर औद्योगिक हैं। ये वे स्थल हैं जो पुरावशेष कल्पना को उपलब्ध रहते हैं। इनकी जहरीली पारिस्थितिकी को जानबूझ कर दोबारा बाजार में ऐसा रूप दे दिया जाता है जिसके फलस्वरूप ये दिलचस्प स्थावर भूसम्पत्ति उत्पाद बन जाते हैं। विश्व भर में विशेष रूप से यूरोपियन -अमरीकी शहरों में काफी लम्बे समय से औद्योगिक 'पतन' होता रहा है। उसकी तुलना में मुंबई जैसे शहर का सांस्कृतिक पतन काफी कम भविष्यसूचक रहा है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि मुंबई जैसे शहरों में विषैले कूड़ा-करकट, रद्दी से दोबारा सामान बना लेना, जहाजों को तोड़ना जैसे काम बखूबी होते हैं। दुनियां की नई अर्थव्यवस्था में मुंबई एक ऐसी जगह बन गया है जहां पुरानी रद्दी चीजों को दोबारा नया बनाया जाता है। इस तरह के नवीकरण मरम्मत, दोबारा पुराने सामान का उपयोग लायक बनाने के काम मुंबई में आम तौर पर होते हैं। यूरोपियन या अमरीकी शहरों में - चाहे मैनचेस्टर हो या न्यूयार्क - इस किस्म के नवीकरण नहीं होते।

किसी भी तरह के सुरक्षा दायरे, सार्वजनिक बहस के बगैर एक शहर, एक प्रयोगात्मक शहर या फिर एक 'एक्स सिटी' शहर का जन्म हो रहा है। थोड़े वक्त के लिए बदलाव के चलते एक नया परिदृश्य उभरा है। तभी तो अब प्रश्न पूछना जरूरी हो गया है। यह परिदृश्य एक साथ नाटकीय, सांसारिक और ऐहिक है। वर्तमान निर्मित ढांचे के नीचे पारिस्थितिकी गिरावट, खालीपन, अल्पकालिकता, अविकसितता, लुप्तप्राय हो रहे हालात नजर आ रहे हैं। निर्माण और विनाश साथ-साथ चल रहे हैं। इनके चलते मुंबई में एक अस्थायी रूप नजर आ रहा है। शहर की क्षेत्रीय और चाक्षुष हालत अजीबो गरीब हो गई है। मध्य मुंबई में कपड़ा मिलों में भूतिया चुप्पी व्याप्त है। बस इन्तजार है तो नीलामी का और इन स्थानों के स्थावर भूसम्पत्ति में बदल जाने का और इन्तजार है तो उस अजीबो गरीब योजना का जिसके तहत नजदीक ही नमक पटल, धान के खेत और रासायनिक फैक्टरियां एक साथ काम करेंगी। अब अगले भाग में मैं चर्चा करूंगी उस सार्वजनिक और निजी स्तर पर की गई पहल की जिसके तहत मुंबई को 'विश्व श्रेणी' का नगर बनाने की योजना है। इसको नाम दिया गया है 'मुंबई मेक ओवर प्रोजेक्ट'। मेरी कोशिश रहेगी मैं इन प्रयोगों से थोड़ा आगे जा कर उस सैद्धांतिक सामाजिक व्यवस्था से इस योजना को जोड़ दूं जिसकी मैंने पहले बात की है।

मुंबई मेक ओवर योजना

2004 मुंबई में एक सक्रिय बहस शुरू हुई थी। इस बहस को समाचार पत्रों ने मुंबई मेक ओवर योजना नाम दिया था। कुछ प्रमुख नागरिकों ने एक गैर सरकारी संगठन 'बॉम्बे फर्स्ट' का गठन किया। उन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी मैकिन्से एण्ड कंपनी को आमंत्रित कर मुंबई को 'विश्व स्तर का शहर' बनाने से सम्बद्ध एक रिपोर्ट तैयार करने को कहा था। इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था। पहले किए गए प्रयासों में कुछ लोकोपकारी काम जरूर शामिल हैं। उन प्रयासों का सरकार या राजनीति से कोई ताल्लुक न था। प्रमुख नागरिक, अपनी -अपनी जिन्दगी सुख चैन से अपने -अपने तरीकों से जीने में सन्तुष्ट थे। सरकार, नौकरशाहों का दखल उन्हें पसंद न था। उदारीकरण और औद्योगिक अर्थव्यवस्था के पतन के बाद सरकार ने औद्योगिक नीति पर अपना नियंत्रण पक्का कर लिया था। सरकार ने उद्योग शहर से बाहर ले जाने का भी फैसला कर लिया था। सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने का फैसला किया था। यह साफ हो गया था कि शहर को सेवा- प्रबन्धक बनाने के लिए पूंजी निवेशक की जरूरत पड़ेगी। शहर में जातीय-धार्मिक दलों और स्थान को लेकर

अमीर -गरीब के बीच शुरू हुए टकराव ने इन विचारों से सिर्फ कटुता ही फैलाई। इसके फलस्वरूप कभी-कभी संभ्रात वर्ग के लोग शहर के विकृत हो रहे पर्यावरण को लेकर एक कमजोर सी चिन्ता व्यक्त कर देते थे।

इस योजना ने सार्वजनिक दिलचस्पी को तो तैयार कर लिया है। बेशक शहर के स्थानिक विकास में सम्बद्ध रहस्यमय नीतियों के संदर्भ में इस योजना का विरोध भी नजर आ रहा है। महत्वपूर्ण है कि विश्व बैंक इसमें विशेष दिलचस्पी ले रहा है। अपने यहाँ जो भी लोग इस योजना में रुचि ले रहे हैं उनको मैकिन्से एंड कम्पनी की रिपोर्ट 'विजन मुंबई' और उसमें की गई सिफारिशें स्वीकार्य हैं। दरअसल विश्व बैंक ने हाल ही में राज्य सरकार से सलाह मशवरा किया है। बैंक का सुझाव है कि शहर की कार्यप्रणाली को बेहतर बनाने के लिए जमीन के इस्तेमाल में सुधार की जरूरत है। शहर का आकार और माप ऐसा बड़ा है कि शहर के क्रिया -कलापों पर अर्थव्यवस्था का प्रभाव पड़ता है। भूमि के इस्तेमाल के क्षेत्र में सुधार जरूरी है। यही एक तरीका है जिससे शायद हमारी अर्थव्यवस्था संभल सुधर जाए। अंतर्राष्ट्रीय पूंजी निवेश के लिए उठाए गए कदमों से जैसे आर्थिक सुधार हो पाए हैं वैसे भूमि सुधार करने से सुधार हो पाएगा। *5

90 के दशक से लेकर इस दशक तक राज्य ने जो भी तकनीकी हल निकाले, उनसे जो भी नुकसान हुआ उसकी जानकारी बहुत से नागरिकों को अब मिल रही है। लोकप्रियता पाने के लिए किये गए ये राजनैतिक सुधार थे। इस बहस ने बहुत सफलतापूर्वक इस संकट को उजागर किया है। शहर के उत्तरी भाग में 26 जुलाई को आई बाढ़ के फलस्वरूप पहले से ही कमजोर ढांचा और चरमरा गया। एक ही दोपहर में एक मीटर बारिश रिकार्ड की गई। सम्पत्ति और जानमाल का काफी नुकसान हुआ था। लेकिन तब तक मेकओवर योजना चालू हो गई थी। कई कदम उठाए जा चुके थे।

अक्तूबर 2004 को नए प्रधानमंत्री ने वादा किया था कि केन्द्रीय सरकार हर तरह से मुंबई को शंघाई बनाने में मदद करेगी। शहर के भविष्य के साथ देश के भविष्य को जोड़ कर देखा जा रहा था। गत वर्ष अक्तूबर में गठित नई महाराष्ट्र राज्य सरकार ने सबसे पहला काम यही किया कि बड़ी बर्बरता से 90,000 झुग्गियों को ढा दिया और 4,00,000 लोगों को बेघर कर दिया। वे लोग यह नहीं प्रमाणित कर पाए थे कि वे शहर में 1995 से पहले से रह रहे हैं। यही वह तारीख है जिससे आप कानूनी तौर से निवासी माने जा सकते हैं। यह तारीख अपने -आप में महत्वपूर्ण थी। इसी का प्रमाण मिलने पर तय किया जाना था कि कौन मुंबई में रह सकता है और कौन नहीं रह सकता।

1995 में शिवसेना सरकार ने एक 'मुफ्त आवास योजना' शुरू की थी। यह योजना उन लोगों के लिए थी जो यह प्रमाणित कर पाएंगे कि वे 1995 से पहले से मुंबई में रहते आ रहे हैं। इस योजना को आर्थिक स्तर पर व्यवहार्य बनाने के लिए टी.डी. आर. (ट्रेडेबल डेवलपमेंट रॉइटस) के तहत निजी निर्माताओं के जरिए पात्रतायुक्त गरीबों को फिर से बसाने की आर्थिक व्यवस्था की गई थी। झुग्गी-झोंपड़ी निवासियों के लिए बैरक नुमा रिहायशी कमरे बनाए जाने थे। एस.आर.ए. (स्लम रिडेवलपमेंट ऑथरिटी) के तहत निर्माता खाली किए गए प्लॉट पर निर्माण करके उसे बेच सकेगा। आखिर एक ऐसी मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय उपभोक्ता जनसंख्या की आवासीय जरूरतें भी तो पूरी करनी थीं।

अवरुद्ध स्थान की चर्चा मैंने शुरू में की है। मुंबई में जमीन की कीमतें बाजार में सरासर विकृत हैं। इसके चलते पूरे विश्व में मुंबई में स्थावर भूसम्पत्ति की कीमतें सबसे ज्यादा हैं। इस तरह निजी डेवलपर-बिल्डर लाभ कमाते हैं। दूसरी ओर गरीब लोग अवरुद्ध स्थानों को छोड़ने की मात्र एक मुद्रा बन जाते हैं। व्यवहारिक स्तर पर झुग्गी-झोंपड़ी निवासी को पहले अपना निवास छोड़ कर अस्थाई कैम्प में जाना पड़ता है। फिर एस.आर.ए. के तहत उसे पुन: स्थापित किया जाता है। इसमें सब फैसले सरकार और डेवलपर करता है। किराए की अवरुद्ध बिल्डिंगों पर भी यही योजना लागू की गई थी। ये

शहर में सबसे पुरानी इमारतें हैं। ये टूटने के कगार पर हैं। बाजार की निगाह में ये एकदम लुप्तप्राय हैं। इनके बदले में पर्याप्त मूल्य भी नहीं मिल सकता है। जिस जमीन पर ये भवन खड़े हैं वह बेहद मूल्यवान है। इसमें कोई शक नहीं है पर किराए के माध्यम से कोई लाभ नहीं है।

डेवलपर को तो पुन: स्थापित किए जाने वाले लोग सिर्फ स्थान की इकाई मात्र ही नजर आते हैं। इसलिए वह तो एक बिकाऊ फुट स्थान का मात्र उस निगाह से मूल्यांकन करता है कि उसे उसके बदले कितने लोगों को पुन: स्थापित करना है। जितनी संख्या उसे चाहिए अगर उसमें कोई कमी पेश आती है तो वह उसकी गिनती गढ़ लेता है। ये योजनाएं प्रभावित लोगों के बीच बराबरी को जन्म देती हैं। शहरी गरीबों की एक महत्वपूर्ण जमात खड़ी हो जाती है क्योंकि यह बहुतों को प्रभावित करती है। शहर में बड़े पैमाने पर पुन: निर्माण का रास्ता तब खुलता है जब बहुत पहले से निर्मित जटिल पारिस्थितिकी को नष्ट कर दिया जाता है। इन पुराने पड़ चुके रिहाइशी स्थानों का जब नवीकरण कर दियाजाता है तो इन विस्थापित लोगों को एक जटिल अनुभव का सामना करना पड़ता है। सरकार जब 'मुफ्त' में मकान देती है तब स्थान की वास्तविकता एक प्रभावी समापन हो जाता है। तब इस स्थान को बाजार में बेचा जा सकता है। शहरी आत्मपरकता, निर्वासन और क्षणभगुंरता के गुण ग्रहण कर लेती है।

सुधार के लिए उठाए गए इन कदमों का एक और लक्ष्य होता है स्थावर भू-सम्पत्ति के लिए एक बाजार उपलब्ध करवाना। इसके चलते भीतर की जानकारी होने के कारण सट्टेबाजों को पूंजी निवेश करने में मदद मिलती है तो दूसरी ओर मुफ्त में आवास प्राप्त करने का अधिकार। यह मांग बढ़ाने का एक जरिया है। जो इन गतिविधियों के हिस्सेदार नहीं होते हैं वे सिर्फ सपने देखते हैं। यही कारण है कि सट्टेबाजी पर निर्भर, लाभ कमाने में लगे बाजार से थोड़े समय के लिए जुड पाते हैं ऐसे लोग जिन्हें हटाया जा सकता है। ये आम तौर पर मेहनतकश लोग होते हैं। ये वे लोग होते हैं जो नए शहर में मजदूरी करते हैं – ये वे लोग होते हैं जिनके बगैर काम नहीं चलता। ये लोग अपचेय होते हैं। समकालीन शहर में नागरिकता की संस्कृति और घटना क्रिया विज्ञान पर इस प्रयोगात्मक सोपान के प्रभाव पर अब मैं चर्चा करना चाहूंगी ? इसकी चर्चा करके शहर के भविष्य के बारे में मैं कोई भविष्यवाणी नहीं करना चाहती हूँ। जरा विभिन्न लोगों के बीच चल रही साजिश पर ध्यान दीजिए। ये लोग हैं - राजनेता, अफसरशाही, डेवलपर और अंतर्राष्ट्रीय स्थावर-भूसम्पत्ति पूंजी। जरा सोचिए स्थावर भूसम्पत्ति का मूलधन कहां से आता है, कैसे संचारित होता है? यह विश्व के मूलधन का एक रूप है। इसके चलते शहर में फैला है गरीबी का सरसाम। इसी सरसाम ने एक अजीब सौदेबाजी, सट्टेबाजी को जन्म दिया है। यही स्थान के लिए बाजार में अनुचित लाभ उठाती है। यहीपरिवर्तन और क्षणमंगुरता को जन्म देती है। बस रह जाते हैं उम्मीद लगाए बैठे निवासी – निश्चित समय तक इन्तजार करते हुए लोग।

संकट में समय

भविष्य के नगर का बुनियादी तर्क एक तरह से माना जा सकता है कि शहरी गरीबों के हक – जिन्हें नागरिकता के ढांचे में दावों और जरूरतों के आधार पर दिया गया – एक तरह की दौलत है। यह एक ऐसी दौलत है जिसे खुले हाथों खर्च किया जा सकता है। ऐसा स्थान के लिए बाजार तैयार कर के किया जा सकता है। भविष्य की तर्कसंगत आधारशिला है गरीबों की बेकार जिन्दगियां और उनके दूषित जीवन। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है यह कोई क्रियात्मक तर्क नहीं है। 'अच्छे शहर' और समृद्ध सम्पन्न नागरिकों - ऐसे नागरिक जो सम्पत्तियों के मालिक हैं - के विकास को साजिश के तहत विफल कर दिया जाता है मेरी दिलचस्पी घटना- क्रिया-विज्ञान राज्य में है। आज यह भविष्य को छूती हुई आजाद हो चुकी है। एफएसआय, टी.डी.आर जैसे योजना सम्बद्ध औजार आज ऐसे हथियार बन गए हैं जो निर्माण को

सम्भव बनाते हैं। आज हम निर्मित परिदृश्य की बेतुकी परिवर्तनशीलता देख रहे हैं। ढांचागत निगाह से अगर देखा जाए तो तर्क नाम की चीज नजर नहीं आती है। यही बात जिन्दगी को लम्बे समय तक जीने पर भी लागू होती है। ये इमारतें सीधे खड़े रहने की राजनीति का प्रतीक बन गई हैं। यही तत्व शहरी नागरिकता में स्पष्ट बदलाव लाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि यह निर्मित इमारत में बदलाव के नजदीक होता हैं।

निर्मित इमारत के संदर्भ में द्वीप नगर की उदग्रता ने समाज, बहिष्कार और कब्जे ने एक नाटकीय स्थिति बना दी है। ये ढांचे सिर्फ शहर की सामाजिक और सांस्कृतिक जिन्दगी को नहीं बदलते ये तो स्थान को लेकर की गई कल्पना तक को बदल देते हैं। बाजार के संदर्भ में यह निर्मित हो चुकी और निर्मित होने जा रही इमारतों - झुग्गी झोंपड़ियों के लिए स्थान, किराए के नियंत्रण में इमारतें, फैक्टरियां, गोदाम, नमक-क्यारियां, कच्छी, शहरी गांव और औद्योगिक रिहायशी मकान - को पुरानी और बेकार बना देती हैं। अपनी मौजूदा हालत में ये इमारतें एक तरह से बेकार ही मानी जाती हैं।

आम आदमी के लिए इन बदलावों को सामूहिक लाभ से जूझना पड़ता है। यह बदलाव सट्टेबाजी के लिए तो महत्वपूर्ण होते ही हैं साथ ही भविष्य को देखने के लिए दर्पण का काम करते हैं। भविष्य का शहर एक अस्थाई दुनिया है। यह निर्मित तो हो रहा है पर इसे कानूनों से बचाना पड़ेगा। इस तरह एक अस्थाई दुनिया एक ऐसी अस्थाई जनसंख्या के साथ है जो कभी भी बेघर हो सकती है। यह वह जनसंख्या होती है जिसे कभी भी 'स्थान' को और 'कुशल' बनाने के लिए बेघर किया जा सकता है। शहरी सुधार के लिए इन शहरी गरीबों को जाली मुद्रा की तरह इस्तेमाल किया जाता है। वह वर्तमान में हो रहे विकास की विफलता के प्रतीक भी हैं और पुन: निर्माण में वह एक संसाधन भी हैं। स्थान निर्मित करने की जो भी कोशिश की जा रही हैं उससे वे कटे हुए हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जिस जगह पर वे हैं उसका विनिमेय यानी अदला-बदली नहीं हो सकती है। न ही इस स्थान की कोई अदला बदली हो सकती है।

शहर में रहने के हक का मतलब यह कतई नहीं है कि ये नागरिक सम्पत्ति के मालिक भी बन जाएंगे। ये ऐसे हक हैं जो इन्हें प्रभावशाली ढंग से चलती फिरती आबादी बना देते हैं। स्थान किस प्रकार का है? इसका फैसला उस जमीन के लोप होने और अस्थाई प्रकार से हो सकता है। लचीली योजना का सिद्धांत एक सामाजिक तथ्य नहीं है। यह तो एक अस्थायी सच्चाई है। यह भविष्य का ठहरा हुआ एक रूप है। मैंने जिन लचीले परिदृश्यों की चर्चा की है इनमें वक्त ठहर चुका है। इस ठहरे हुए वक्त के बाद आता है स्थान का छीना जाना, फिर से कहीं स्थान दे देना और अल्पकालिकता। अधिकारों का हवाला दे कर मुफ्त में मकान देने का वादा कर के उन झुग्गी-झोपड़ी निवासियों को जो अपनी रिहायश का सबूत एक खास वर्ष से पहले प्रमाणित कर दें - फिर से बसाने का वादा किया जाता है। यह खास तारीख और वर्ष भी यदाकदा बदलता रहता है। इसके बदले में डेवलपर को निर्माण करने का अधिकार दे दिया जाता है। मकानों के लेकर अधिकारों की रक्षा के एक सामाजिक कार्यकर्ता ने सार्वजनिक तौर पर घोषणा की थी कि इस योजना का लक्ष्य है झुग्गी-झोपड़ियों को ढाने से बचाना। यह एक सच्चाई है कि ढाने का खतरा हर वक्त बना रहता है। एस.आर.ए. योजना झुग्गी झोपडी निवासियों के मन में एक आशा की किरण हर समय जगाए रखती है - कभी कभी तो पूरा जीवन ही इसी उम्मीद के सहारे बीत जाता है।

परिदृश्य को क्रिया रूप देने के लिए जिस तरह की योजना बनाई जा रही है वह बाजार और स्थान के बीच अटकी है। सरकार की भागीदारी एक अजीब संसार की रचना करती है। यह अनेक दावपेंच और बदलावों में फंसी है। दूसरे शब्दों में पूरी स्थिति अस्थायी है जिसमें अभी अटकलें लगाई जा रही हैं। इस स्थिति के चलते योजना का काम अस्थाई रूप से

हो रहा है। आधुनिकीकरण, निर्माण और ढाने का काम सबका सीधा टकराव होने वाला है।

भविष्य के शहर का एक आडंबर साफ नजर आ रहा है। हालांकि ऐसा जरूर लगता है कि निर्मित स्थान के लिए जिम्मेदारी ली जा रही है। निर्मित स्थान को लेकर यह नजरिया आदर्श विचारों पर आधारित है।

टिप्पणी :

*1 बैंगलोर में रमेश रामनाथन ने एक शक्तिशाली संस्था 'जनाग्रह' स्थापित की है। सीएनएन- आई.बी.एन. पर 5 जुलाई,2006 को रमेश ने कहा कि जैसे वित्तीय संकट के फलस्वरूप उदारतावाद का सहारा लेना पड़ा, वैसे ही जुलाई, 2005 की मुंबई में आई बाढ़ ने शहरी विकास के मुद्दे को प्राथमिकता प्रदान की है।

*2 दो मानवशास्त्री अर्जुन अप्पादुराई और थोमस हैनसेन ने अपने लेखन में इस तर्क को अपवाद माना है। हेनसन ने शिवसेना के संदर्भ में हिंसा और पौरुष संस्कृति का रिश्ता उजागर किया है। अप्पादुराई स्थान और शहरी ढॉचे के 'स्पेक्टर' सवाल को अंतर-समुदायी रिश्तों की समस्या के संदर्भ में उठाते हैं।

* यह सब जानते हैं कि मुंबई में किराए पर मकान मिलना कितना मुश्किल है। इसका सीधा सम्बध 1948 के किराया नियंत्रण कानून से है। इस कानून के तहत किराए पर एक बार मकान दे कर किराया बढ़ाया नहीं जा सकता और किराएदार के बाल -बच्चे उस जगह का उपयोग जारी रख सकते हैं। इसके फलस्वरूप साठ के दशक के बाद किराए पर देने लायक मकान बनाने ही बन्द कर दिए गए। शिरीष पटेल एक वास्तु इंजीनियर और नगर आयोजक हैं। उनके अनुसार यह नीति झुग्गी-झोंपड़ियों के विकसित होने के लिए जिम्मेदार है। यह भी एक सच है कि अनेक मध्यवर्गीय परिवार झुग्गी-झोपड़ियों में मजबूरन इसलिए रहते हैं क्योंकि किराए के मकान उपलब्ध नहीं हैं।

** अप्पादुराई का निबन्ध देखें 'स्पेशल हाऊसिंग एंड अर्बन क्लेंसिंग इन मिलनियल मुंबई' व्यक्तियों और सम्पत्ति के प्रति हिंसा का जटिल सम्बध समझने के लिए यह निबन्ध पढ़ें।

*** समकालीन मुंबई में स्थावर भूसम्पत्ति को लेकर सट्टेबाजों की बड़ी मदद हो रही है। लोगों ने जहाँ कहीं भी जमीन हथियाकर उस पर अपना हक जमा तो लिया पर नियम - कानून इतने जटिल हैं कि उन्हें दोबारा घर-जगह देने का वादा करके हटा दिया जाता है। इन सब के चलते शहर में भारी बदलाव आ रहा है। इसमें गरीबों को मदद करने के बहाने छलकपट करने वाले भी सक्रिय हैं। शहर में आ रहे भारी बदलाव को पुराने फैशन के संदर्भ में एक प्रयोग बताया जा रहा है। दूसरे शब्दों में यह एक प्रयोग है जरूर पर इसके माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के लिए रास्ता खोला जा रहा है। आवासी की अस्थिर कमजोर स्थिति के चलते लोगों को मुद्रा में बदला जा रहा है। इन्हीं के माध्यम से स्थावर भू-सम्पत्ति पूँजी संचित होती है।

*5 लेखक ने विश्व बैंक सलाहकारों के साथ अनौपचारिक सूचनात्मक बैठकों में 2005 में न्यू स्कूल न्यूयार्क में भाग लिया था।

अनुवादक : सरोज वशिष्ठ

■ ■ ■ ■ ■